मनुष्य बनो

انسان بنو

मानवता के मुख्य नियम

याल फकीर चन्द जी महाराज

मानवता मन्दिर होशियारपुर (पंजाब)

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है। मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहितकारक लेखों को भी स्थान दिया जायगा।

४—किसी धर्म, पंथ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जाँय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ साफ अवश्य लिखना चाहिये। उत्तर के लिये जबाबी कार्ड आना चाहिये वी० पी० पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायगी। इसका वार्षिक मूल्य ५.२५ है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुँचे तो पहले अपने यहां डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर मिले व अगला अंक निकलने से एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुँचने पर दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजने चाहिये। मनीआर्डर कूपन पर अपने पते साफ साफ लिखना चाहिये। और पते की तबदीली भी।

प्रकाशक

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

❋ मनुष्य बनो ❋

वर्ष २७ | वैशाख सं० २०३४ वि० अप्रैल १९७७ | संख्या ७

॥ मंगलाचरण ॥

नाम दान प्रदान कीजे, गुरु दीन दयाल ।
चरन का नित ध्यान सुमिरन, चित न व्यापै काल ॥१॥

सर्व समरथ सर्व अंग संग, सर्व जगदाधार ।
शुद्ध मन से पद कमल का, करूँ, निसदिन प्यार ॥२॥

सिंध भव अति अगम् दुस्तर, सूझै बार न पार ।
विकल मन रहे सोच छिन छिन, कैसे जाऊँ किनार ॥३॥

दया कीजै महर कीजै, लीजे चरन लगाय ।
भक्ति दीजे तार लीजे, कीजे मेरी सहाय ॥४॥

शब्द में रत रहूं पल पल, सुरत पावै चैन ।
राधास्वामी दया सागर, भजूं मैं दिन रैन ॥५॥

——००——

छबीले ! छबीले !! राधास्वामी होशियार, १५-३-७६

तू छबीले का दास नहीं मगर छबीला है। छबीला उसको कहते हैं, जो बाहर से सजा हुआ सिंगार किया हुआ हो। अन्दर का छबीला वो है जिसका तन मन भक्ति के ख्याल में रंगा रहे, व आनन्दमय रहे। यह तो स्थल व सूक्ष्म दो शरीरों का हाल है एक तीसरा शरीर है आत्मा उसका छबीलापन क्या है ? (कारण)

जो आदमी अपने शरीर के भान को भूलकर मनके ऊपर प्रकाश में रहता है वो कारण शरीर का छबीलापन है। इससे आगे वह तत्व है जो तुम्हारा और संसार का आदि है। उस अवस्था में छबीलापन कोई नहीं होता। न वहां कृष्ण की बंशी है न वहां शिव का डमरू है न वहां प्रकाश है, न अज्ञान है, न ज्ञान है, न द्वैत है न अद्वैत है, हम सब उस घर से आये – मेरा काम या गुरू का काम जीव को उसका पता बताना है। मगर हम जीव शरीर के छबीलेपन में मन के छबीलेपन में आत्मा के छबीलेपन में आनन्द लेने के इच्छुक हैं। यह तीनों अवस्थाएं परिवर्तनशील हैं। जब तक वो जो चौथी अवस्था है उसमें हमारा अपना आप लय नहीं होता या अनुभव नहीं होता यह जनम-मरण का चक्कर खत्म नहीं होता। असली व सच्चा गुरू हर शक्स का वह चौथा पद है।

अपने अन्तर चलने की कोशिश कर, बाहर का नाचना गाना मन से प्रेम भक्ति की तरंगें उठाना, उपदेश करना, किसी दूसरे का सहारा लेना ये सब छबीलेपन में है तुम मेरे पास आओ या न आओ यह खत रोज सुबह साधन के वक्त पढ़ लिया करो और अन्तर्मुखी होने की कोशिश करो ताकि तुम्हारा यह मानुष तन सफल हो जावे मेरे मन में तेरे लिये सच्ची हमदर्दी है। मैं चाहता हूं कि तुम जीवन में जीवन का ध्येय प्राप्त करो, वह ध्येय है जहां से आये वापस चले जाना–हमारा असली घर वो है जिसका मैंने इशारा किया है।

जो तुमने सतसंगियों के पते पूछे व उनसे मिलना चाहते हो। यह सब छबीलापन है। तुमने मुझे मकरध्वज भेजा था वह मैंने तो खाया नहीं एक मित्र को दे दिया था मगर यह खत चंद्रोदय की शक्ल में भेज रहा हूं।

आपका फकीर

(क्रमाँक से आगे)

ऊँची नीची घाटी उतरी ।
तिलकी उलटी फेरी पुतरी ॥

इस ऊँची नीची घाटी से स्वामीजी का क्या अभिप्राय है मुझे पता नहीं। मैं यह समझता हूं कि मनुष्य के अन्दर जो संकल्प या विचार उठते हैं यह कभी ऊँचे जाते हैं कभी नीचे। इस ऊँच नीच पने का साधन करके इसको समाप्त करके एक जगह ठहर जाना है। यह है ऊँची नीची घाटी उतरी। जब कोई ऐसा करेगा तो उसकी आँखों की पुतली स्वाभाविक ही ऊपर चढ़ जायेंगी। जैसे आज सुबह जब मैं अभ्यास से उठा तो मेरी आँखें नहीं खुलती थीं, क्योंकि मेरी आँख की पुतली ऊपर चढ़ी हुई थी। यह पुतली क्यों चढ़ी ? क्योंकि मेरी सुरत त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न से ऊपर चली गई थी। जिसकी सुरत ऊपर जाती है उसकी पुतली स्वयंमेव चढ़ जाती है। कई आदमी जोर देकर अभ्यास के समय पुतली को बदलना चाहते हैं। ऐसे करने वाले कहतें हैं कि सिर में दर्द होने लग गया। पुतली को आप नहीं पलटना चाहिये पुतली स्वयं ही पलट जायगी। जो आदमी पुतली को आप उलटना चाहते हैं वह कोई न कोई कष्ट मोल लेते हैं। प्रेम के वेग में पुतली स्वयंमेव चढ़ जाती है। यह एक स्वाभाविक बात है। यह मैं इसलिये कह रहा हूं कि कितने ही सतसंगी ऐसे हैं जो पुतली को उलटने की कोशिश करते हैं। वह अपने अन्तर आगे जाने की आस तो रखते नहीं, अपने अन्तर प्रेम तो करते नहीं मगर पुतली को उलटने की कोशिश करते रहते हैं। उनके सिर में दर्द हो जाता है और कोई न कोई रोग हो जाता है, दिमाग खराब हो जाता है। पुतली तो स्वाभाविक ही उलटती है।

ऊँची नीची घाटी उतरी ।
तिलको उलटी फेरी पुतरी ॥

जो आदमी अभ्यास करना चाहे उसको एक बात कहता हूं कि सच्चे बनो। जो कुछ चाहते हो उसकी लगन रक्खो। तुम्हारा काम स्वयं हो जायगा। यदि परमार्थ चाहते हो तो सच्चे बनकर चाहो। दुनिया की कोई वस्तु चाहते हो तो सच्ची लगन से चाहो। यह प्रकृति का कानून है। माँगो और मिलेगा। दरवाजा खट खटाओ, खुलेगा।

मालिक के दरबार में, कमी वस्तु की नाहिं।
बन्दा मौज न पावहीं, चूक चाकरी माहिं॥

चाकरी में गलती है। तरीका नहीं आता।

गढ़ भीतर जाय कीना राज।
भक्ति भाव का पाया साज॥

अपने अन्तर जाकर राज पा लिया। राज का अर्थ है सिंहासन पर बैठ जाना अर्थात् जब मन इकट्ठा हो जाता है तो मन को शान्ति मिल जाती है। वहां वह राज करता है। यह रामायण क्या है? राम दशरथ का पुत्र है, बच्चा है। दशरथ तुम्हारा शरीर है। इसके अन्दर दश इन्द्रियों वाला बच्चा है जो तुम्हारे अन्दर उत्पन्न होता है। यह मन बच्चा है। जब इसको शान्ति मिल जाती है सीता हरली जाती है। कौन हरता है? रावण? रावण क्या है? रजोगुणी वृतियों का नाम रावण है। जहां दशरथ है वहां दसशीश वाला भी है। यह शरीर दस इन्द्रियों वाला है और रजोगुण है रावण वह दस शीश वाला है। वह उसकी शान्ति को भंग कर देता है। फिर राम लंका पर चढ़ाई करता है। यह लंका त्रिकुटी का स्थान है। इस पर चढ़ाई करके वह रावण को मारता है कैसे मारता है? वह मन जो तरह तरह के विचार उठाता है और उसको अशान्ति देता है उसको मारकर फिर अयोध्या में राज करता है। अयोध्या देह है। जब मन की शान्ति किसी को मिल जाती है तो फिर बहुत

से लोग आगे जाना नहीं चाहते। वह मानसिक शान्ति में ही रह जाते हैं। मन से आगे जाने के लिये आत्म-पद है।

कर्म बीज अब दिया जलाई।
आगे को अब सुरत बढ़ाई॥

कर्म बीज—कर्म किसका नाम है। कर्म जब भी होगा तुम्हारी वासना या इच्छा से होगा। जब मन दौड़ दौड़कर ऊँची नीची घाटी चढ़ कर शान्त हो गया तो आस समाप्त हो गई। उसका जी मचल गया। मन की शान्ति का नाम है त्रिकुटी का स्थान। इस मन से धारें निकल निकल कर हमारी सृष्टि को रचती हैं। जिन्होंने आगे जाना होता है उनके लिये आगे की मंजिल है।

नौबत झड़ती है आठों याम।
सूरत पाया मूल कलाम॥

वह मन जो वहाँ पर जाकर एकाग्र होता है और वहां जो आवाज पैदा होती है उसको कहते हैं मूल कलाम। वहां जाकर सुरत विश्राम करती है। मूल को पा लेती है।

महा काल और कुरम बखाना।
उत्पति बीजा यहां से जाना॥

उत्पत्ति बीजा—रचना करने का जो बीज है, ओ३म् के ऊपर जो बिन्दु है, वहाँ से इस सृष्टि की रचना होती है। वहाँ से कौसमिक किरणें निकलती हैं। उनमें से प्रकाश निकलता है और वह प्रकाश विराट पुरुष को बनाता है।

सूरज चांद अनेकों देखे।
तारा मंडल बहुविधि पेखे॥

चूँकि रचना होती तो ऊपर की रचना से फिर सूर्य, चन्द्रमा, सितारे बनते हैं।

एकौ माई जगत व्यापी, तिन चेले परवान।

वहाँ से चूँकि रचना होती है उसकी, तो उसका प्रतिविम्ब हमारे दिमाग पर भी होता है और हमारे अन्तर भी कभी सूर्य, कभी चन्द्र, कभी सितारे दिखाई आते हैं। जब विन्दु के ऊपर सुरत ठहर जाती है तब सूर्य चन्द्र सितारे दिखाई नहीं आते।

पिंड अंड से न्यारी खेली।
ब्रह्मण्ड पार चली अलबेली ॥

पिंड शरीर और ब्रह्मन्ड तुम्हारा मन है। सुरत पिंड और अंड से पार हो जाती है। यह जितना ब्रह्मन्ड बनता था यह तुम्हारे संकल्प से बनता था। सुरत अब उससे पार हो गई।

बन और पर्वत बाग दिखाई।
चमन चमन फुलवारी छाई ॥

मैं कहता हूं कि कई पुरुष अलंकार रूप में किसी बात की शोभा वर्णन करते हैं ताकि लोगों में उत्साह पैदा हो जाय। मैं कभी कभी हँसी में कहा करता हूं जैसे कि सब लोग रेडियो सुना करते हैं कि—

मैं तारियाँ दे बुन्दे पाऊँगी।
चन्द दा मैं टिक्का लाऊँगी ॥
सूरज दा मैं हार पाऊँगी।
हवा दी मैं चुन्नी लाऊँगी ॥
मैं यार नूं मनावन जाऊँगी ॥

यह सब कविता के रूप हैं। उस यार की चाह को बढ़ाने के लिये एक वर्णन शैली है। इसी प्रकार यह वर्णन शैली है जीवों को अपने अन्तर ले जाने के लिये, उत्साहित करने के लिये कि वह इस भावना में आकर अपने अन्तर अभ्यास और साधन करें। मैं इसका यह अर्थ समझता हूं। संम्भव है स्वामी जी का कोई और भाव हो। मैं स्वयं इन रोचक और वाणियों में फँसा रहा। बारह-बारह घंटे

अभ्यास किया। यदि स्वामीजी होते तो उनसे पूछता कि आपने यह वाणियां रच दीं। लाखों जीव इस मत में शामिल हो गये। क्या उनको इस जीवन में कुछ मिला ? मेरी तो आँख केवल एक बात से खुल गई कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता। बस ! मुझे यह निश्चय हो गया कि जो कोई भी मेरे रूप को देखता है या प्रकाश में देखता है और मैं होता नहीं तो यह क्या है ? वह उस मनुष्य का अपना ही मन है। और कुछ नहीं। उस मन के चक्र में आकर हम गुरुओं के आगे हाय हाय करने लग जाते हैं। यदि अच्छी बात हो जाय तो खुशी से नाचने लगते हैं। हमारे दुख और सुख का कारण हमारा ओंकार बना हुआ है।

नहरें नदियां निर्मल धारा।
समुन्दर पुल चढ़ हो गई पारा ॥

नहरें नदियां क्या हैं ? हमारे मन के अन्तर के भाव विचार हैं। तुम अभ्यास करते हो। अपने मन को देखा करो। तब तुमको पता लगेगा कि तरंगें उठती हैं कि नहीं उठती। जिस समय वह निर्मल हो जाती हैं वह त्रिकुटी के स्थान से पार हो जाता है—

जब मन आनन्द में आ जाता है जैसे शरीरान्द, प्राणआनन्द, ज्ञान–आनन्द, मन–आनन्द, विज्ञान–आनन्द आत्म–आनन्द, तो वहां चला जाता है और मन आनन्द में मगन हो जाता है। उसको बोलते हैं विलास। विलास कहते हैं खुशी को अर्थात वहां मन प्रसन्न हो जाता है।

राधास्वामी कहत पुकारी।
दूसर मंजिल करली पारी ॥

दूसरी मंजिल कब पार होती है ? जब मनुष्य का मन देह को भूल कर और अपनी हर प्रकार की आशाओं को छोड़कर ऊँची नीची घांटी गुजरने के बाद और यह दृश्य देखने के बाद, शान्त हो जाता है। इस स्थान पर जाकर दूसरी मंजिल पूर्ण हो जाती है। इससे आगे आत्मा की बारी आती है।

शब्द स्थान तीसरा

अब चली तीसर पर्दा खोल। सुन्न मंडल का सुन लिया बोल॥
दसवाँ द्वार तेज परकाश। छोड़े नीचे गगन अकाश॥
मान सरोवर किये अश्नान। हंस मंडली जाय समान॥
सुन्न शिखर चढ़ी सूरंत घूम। किंगरी सारंगी डाली घूम॥
सुन सुन सुरत हो गई सार। पहुंची ज़ाय त्रिवेनी पार॥
महा सुन्न का नाका लीन्ह। गुप्त भेद जाय लीन्हा चीन्ह॥
अंध घोर जहँ भारी फेर। सत्तर पालंग जा का घेर॥
बानी चार गुप्त जहँ उठती। सुरत रागिनी नइ नइ सुनती॥
झन्कारें अद्भुत कहा बरनूँ। सुन सुन धुन मन में अति हरषूँ॥
पांच अंड रचना तहँ कीन्हीं। ब्रह्म पांच तामें हुये लीनी॥
अंडन सोभा बरनूं कैसी। सब्ज सेत कोई पीत बरन सी॥
लख लख अरब तासु परमाना। यह अंडा अति तुच्छ दिखाना॥
या में ब्रह्म व्यापक जोई। ताकी गति कहो कितनी होई॥
ताका ज्ञान पाय यह ज्ञानी। फूलें मन में होय अभिमानी॥
मेंढक सो गति इनकी जानी। कूप समुद्र जान मगनानी॥
कहा करें यह हैं लाचार। वह तो देश न देखा सार॥
बिन देखे कैसे परतीत। उन नहिं जानी अचरज रीत।
इसी ब्रह्म को जान अपार। भूले मारग करें विचार॥
अब इनको कैसे समझाऊँ। वह नहिं मानें चुप्प रह जाऊँ॥
राधास्वामी कही सुनाय। तीनों परदे दिये दिखाय॥

यह तीसरा स्थान है। मैं शब्दों की ओर नहीं जाता। मैं अपने जीवन की रहनी को देखता हूं। कल मैंने कहा था कि जब यह मन अपने रजो गुणी विचारों को छोड़कर शान्त हो जाता है अर्थात जो सीता रूपी शान्ति है वह मिल जाती है, फिर अयोध्या नगरी अर्थात देह में रहता है। मन की शान्ति प्राप्त करने के बाद भी मन की

एक विशेष दशा होती रहती हैं। वह अपनी शान्ति को बखेरना चाहता है और दूसरों को अपनी आधीनता में लाना चाहता है। यह मनुष्य का एक स्वाभाविक गुण है। मनुष्य का मन जब ऐसा करना चाहता है तो उस मन की जो शान्त अवस्था है जिसको वह फैलाना चाहता है वह उसमें ठहर नहीं सकता। यह बात मैं अपने क्रियात्मक जीवन की बाबत अनुभव से कह रहा हूं। तुम्हारे मन में बुरे विचार नहीं उठते। तुम्हारा मन चंचल नहीं है। मन को शान्ति है मगर उस शान्ति में से दुविधा या अशान्ति उठती रहती है। हर एक आदमी अपनी दशा को देखे। रामायण में भी यही लिखा है कि राम रावण को मारकर सीता को ले आये, राज स्थापित करने के लिये यज्ञ किया, घोड़ा छोड़ा ताकि जो दूसरी प्रजा है वह उनके वश में रहे। अश्वमेध यज्ञ किया। उससे पहिले अपने को मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाने के लिये सीता को बनवास दिया। इसका क्या अभिप्राय? हमारा मन जो शान्त होता है उस मन ने अपने बुरे बिचारों को छोड़ दिया। रजो गुणी विचार हमसे छूट गये और सतोगुणी रह गये। इस सतोगुणी भाव में भी अशान्ति उत्पन्न होती है। रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण यह तीनों डाकू हैं। रजोगुण और तमोगुण तो मनुष्य को बहुत दुख देते हैं। यह सुरत को और शान्ति को लूटते हैं। सतोगुण कष्ट नहीं देता मगर यह भी डाकू है। यह क्रियात्मक अंग (अमली पहलू) है। मैं अपनी रहनी को देखता हूं। तुम बुराई कुछ नहीं करते, किसी का बुरा नहीं करते। तुम्हारा मन तुम्हारे साथ है मगर उसमें फिर भी विक्षेप होता है। यह रहनी है। तो पहिला स्थान विराट का, दूसरा अव्याकृत का। अब तीसरा आया हिरण्यगर्भ का। वह मन फिर भी शान्ति को प्राप्त करना चाहता है। सतोगुणी भाव में तुम कितने ही भले क्यों न हो, मन में कोई बुराई नहीं है। बुराइयों को छोड़कर देखो कि तुम्हारे मन में क्या आता है। फिर भी किसी न किसी समय अशान्ति आ जाती है। उस

अशान्ति को दूर करने के लिये फिर मन खोज करता है। फिर वह ओ३म के जो मानसिक विचार उठते थे उनको बिल्कुल समाप्त कर देना चाहता है ताकि यह मन रहे ही नहीं। फिर क्या होता है? जिस तरह गहरी नींद में तुम्हारा मन नहीं रहता, इसी तरह साधन के समय में ओ३म को छोड़कर ओ३म के बिन्दु में समा जाता है। यही शास्त्र कहते हैं। वह बिन्दु वह अवस्था है जहां से तुम्हारा मन बनता है अथवा मन का जो मूल आधार है वह अंडाकार है। उसका नाम है हिरण्यगर्भ। तुम्हारे मन के अन्दर इसका नाम कुछ और रक्खा हुआ है। शास्त्र ने बाहर में उसका नाम हिरण्यगर्भ रक्खा हुआ है। विराट और अव्याकृत से जब सुरत उसमें चली जाती है उस अवस्था का इस तीसरे स्थान में वर्णन है।

अब चलो तीसर पर्दा खोल।
सुन्न मंडल का सुन लिया बोल॥

सुन्न मंडल—सुन्न किसे कहते हैं? एक आदमी बोलता नहीं है उसको कहते हैं कि तू सुन्न हो गया, इकट्ठा हो गया। बात ही नहीं करता। यह तो बाहर का सुन्न है। मन का किसी प्रकार की फुरना न करना सुन्न है चूँकि मन सूक्ष्म प्रकृति है, वहां जो धुन होती है उसको कहते हैं सुन्न मंडल का बोल। वहाँ रारंग सारंग—सारंगी की धुनि होती है। सारंगी क्यों बजती है? सारंगी के तार जब खिच जाते हैं, तन जाते हैं और जब इन पर गज चलता है तब आवाज पैदा होती है। इसी तरह मन की कुल वृतियों को छोड़ने के बाद चूँकि मन के सब तार खिच जाते हैं वहाँ पर जो साधक अभ्यास करता है उसकी रारंग सारंग या सारंगी की आवाज के समान धुनि होती है। यह मेरा साधन जब छूट गया। यदि यहां साधन करना चाहूँ तो नहीं कर सकता। क्यों? क्योंकि वह जो मन के भाव (जज्बे) थे वह उसी समय इकट्ठे होते थे जब मैं भाव और विचारों को सच मानता था। बुराई भलाई के, गुरु रूप के ध्यान के या भक्ति

के या दातादयाल के प्रेम के मन में भाव विचार उठते तब ही तो मैं उनके पास जाया करता था और उन भाव विचारों को सत मानता था। अब मुझे ज्ञान होगया। जो रूप तथा तमोगुण, रजोगुण सतोगुण के भाव उठते थे वह मेरे लिये माया होगये। हैं नहीं मगर भासते हैं। अब केवल प्रकाश और शब्द हैं। ऊपर प्रकाशरूपी सत-गुरु मुझको मिल गया! राधास्वामी मत की पुस्तकें कहती हैं कि दसवें द्वार से आगे सतगुरु मिलता है। सतगुरु दातादयाल या हुजूर महाराज का चहरा नहीं हैं। वह है केवल शब्द स्वरूपी सतगुरु। वहां तक पहुंचाने में इस महासुन्न से निकालने में बाहर का सतगुरु सहायता करता है।

इस एक ख्याल ने कि मेरा रूप दूसरों में प्रगट होता है और मैं नही होता मैं महासुन्न से निकला। मैं तीसरे स्थान का वर्णन कर रहा हूँ इसलिये कहता हूँ कि जब तक मनुष्य को यह ज्ञान नहीं होता, यदि मेरे पास से सुनकर किसी को बुद्धि ज्ञान हो भी जाय, तो भी उसको साधन करने में कठिनाई होगी। जब तक कि वह सह-सदल, त्रिकुटी का और सुन्न का साधन किये हुये नहीं होगा, उसके अन्तर में वह शब्द या वह प्रकाश प्रगट हो ही नहीं सकता।

हीरासिंह! तुम अभ्यासी हो। अपनी रहनी को देखो। क्या अभ्यास में तुम्हारे अन्तर संकल्प या विचार नहीं उठते। अभ्यासियों के अन्तर मन की अच्छी तरंगें उठेंगी। बुरी नही उठेंगी। वह जो प्रेम और भक्ति की अच्छी तरंगें उठेंगी, उनको भी तब तक मनुष्य छोड़ नहीं देगा तब तक वह आगे के स्थान या श्रेणी पर नहीं जा सकता। उनको छोड़ने के लिये क्या करना चाहिये? अपने अन्तर ओ३म् को छोड़ कर ओ३म् की विन्दु में जाकर लय हो जाओ। उसका नाम है तीसरा पर्दा।

दसवाँ द्वार तेज परकाश।
छोड़े नीचे गगन आकाश॥

जब मनुष्य दसवें द्वार के अन्तर चला जाता है तो वहां चन्द्रमा का प्रकाश होता है। इसको मानसरोवर कहते हैं। मानसरोवर साधारणरूप से जल स्थान को कहते हैं। मन का सरोवर। सरोवर कहते हैं तालाब को। वह स्थान जहाँ मन की समस्त लहरें इकठ्ठी हो जाती हैं उसको मानसरोवर कहते हैं। खोपड़ी के ऊपर जब प्रेम के भाव में सुरत ऊपर चढ़ती है. पहिले स्थानों से गुजरती रहती है, आनन्द लेती रहती है। त्रिकुटी में साधन करने से मनको शान्ति मिल जाती है। जिस तरह राम को अयोध्या में आजाने के बाद फिर अपने को मर्यादा पुरुषोत्तमपने को स्थित रखने के लिये सीता को घर से निकाल देने और यज्ञ करके कुल संसार पर राज्य करने के लिये विवशता हुई, इसी तरह यह मन शान्त हुआ हुआ अपनी शान्ति को फैलाना चाहता है मगर वह फैलती नहीं है क्योंकि वह सतोगुण है। उसमें सतोगुणी वृति रखता हुआ आदमी भी अशान्त होता रहता है। यह क्रियात्मक जीवन का पाठ है। उस समय वह सुरत को ऊपर ले जाता है सुन्न में जहां मानसरोवर है। मन की सम्पूर्ण लहरें जहाँ से, अर्थात उस विन्दु के स्थान से उठती हैं वहाँ सुरत चली जाती है।

मान सरोवर किये स्नान।
हंस मंडली जाय समान॥

हंस मण्डली—हंस मंडली से स्वामीजी का क्या भाव है मैं नहीं जानता। हंस एक जानवर को कहते हैं जो दूध और पानी को अलग कर देता है। जो सुरत वहां चली जाती है, जिसमें सतोगुण वाली जो अशान्ति पैदा होती थी, उसने उसको दूर कर दिया। चूंकि यह हमारे अन्तर की दशा है इसलिये इस अनुभव के आधार पर कि जो सुरतें यहां से ऊपर के लोक में जाती हैं जैसे विराट लोक है, त्रिकुटी है और हिरण्यगर्भ है, वहाँ भी ऐसे ही रूहें रहती हैं जैसे यहाँ दुनिया में वसती है। यहां भी अनेक जीव बसते हैं ऐसे ही वहां जो रूहें

रहती हैं उनको हंस कहते हैं। वहां क्या होता है? अशां छोड़कर शान्ति ग्रहण कर लेती है। त्रिकुटी में रजोगुण की अशान्त दूर की, सुन्न में सतोगुण की अशान्ति दूर की। मैं क्रियात्मक रूप से जो मेरे साथ बीती वह बता रहा हूँ। रजोगुण में अशान्ति है वह तो चली जाती है। वह तो रावण है। वह त्रिकुटी में ध्यान करने से दूर हुई। फिर सतोगुणीवृति रखता हुआ आदमी भी अशान्त हो जाता है। उसे दूर करने को सुरत महासुन्न में जाती हैं ताकि रजो-गुण, तमोगुण और सतोगुण न रहें। वह तीनों समाप्त हो गये। कैसे? यह तीनों मुड़कर के मन का जो तालाव है जिसमें से निकल कर गये थे, उसी में समा जाते हैं। वह है हंस मंडली। तब ही तो मैं कहता हूं कि सन्तों ने या कवियों ने वाणी ऐसी लिखी है कि उसको पढ़कर जीव खिच गये, अपने साथ पंथों में या डेरों के साथ लोगों को लगा तो लिया मगर उनको स्वतंत्र नहीं किया। मैं कहता हूँ कि जितने महापुरुष हुये जिन्होंने पंथ चलाये, डेरे बनाये, गद्दियाँ बनाई, नाम दान दिये यह संत सतगुरु नही थे। यह गुरु मुख थे।

गुरुमुख कोटिन जीव उभारे।

इन महापुरुषों की दया से लाखों करोड़ों जीव उभरे अर्थात उनको अपने घर जाने का शौक पैदा हुआ। पंथ में आये और साधन करना आरम्भ किया। मैं इस अवस्था में संत सतगुरु हूँ। मैं जीवों को स्वतंत्र करना चाहता हूँ ताकि वह हमेशा के लिये भवसागर से निकल जांय। गुरुमुखों ने तो उनको उभारा और मैं कहता हूं कि पार हो जाओ। चूंकि पार होने वाले बहुत कम आदमी हैं इसलिये मेरे सत्संग में बहुत कम आदमी आते हैं। यदि मैं अपने आपको संत सतगुरु कहता हूँ तो इसका यह अभिप्राय नहीं कि मैं किसी को फूंक मार कर लेजा सकता हूँ। ऐसा कहना पाखंड जाल है या झूंठा सहारा दिया गया है। यह ठीक भी है और गलत भी है। इस स्थान

पर जाकर जब मनुष्य सुन्न में चला जाता है तो वह सतोगुणी अशान्ति को छोड़ जाता है।

सुन्न शिखर चढ़ी सुरत धूम।
कंगरी सारंगी डालीं धूम॥

वह किंगरी सारंगी तो सुनेगा ही क्योंकि उसके मन की सम्पूर्ण वृतियां इकठ्ठी हो जायेंगी। उससे धुन अवश्य निकलेगी। उससे जो धुन या आवाज निकलेगी वह किंगरी और सारंगी के समान होगी। मैंने सुनी लेकिन अब नहीं सुन सकता। मैंने आज सुबह अभ्यास में इसको सुनने की कोशिश की क्योंकि इस अवस्था का सत्संग कराना था। बहुत जोर लगाया मगर उस धुन को सुन नहीं सका। ऊपर चला गया, क्योंकि मुझे यह ज्ञान हो चुका है कि उसका कोई अस्तित्व नहीं है।

सुन सुन सूरत होगई सार।
पहुंची जाय त्रिबैनी पार॥

त्रिवैनी—मैं कहा करता हूँ कि गंगा, यमुना और सरस्वती इन तीनों के मिलाप का नाम त्रिवैनी है। गंगा इंगला है, यमुना पिंगला है और सुषुम्ना सीधी नाड़ी है। दाईं ओर से जो विचार उठते हैं वह सतोगुणी होते हैं पवित्रता के होते हैं। बाईं ओर के बुराई के होते हैं। सुषुम्ना के केवल आध्यात्मिक भावों के होते हैं।

महासुन्न में पहुंचने पर न सतोगुण रहता है न रजोगुण न तमोगुण। तीनों प्रकार के विचार समाप्त हो जाते हैं। वह त्रिवैनी से पार हो जाता है और वह सब मानसरोवर में लय हो जाते हैं। उसको कहते हैं कि त्रिवैनी से पार जाना।

अब समझ गये होंगे कि त्रिवैनी के पार जाने का क्या अर्थ है। इंगला, पिंगला और सुषुम्ना इन तीनों से तीन प्रकार के विचारों की धारें निकलती हैं जैसे थूक मुँह से आता हैं, पेशाव इन्द्री से आता है। शुद्ध रक्त आने की खास खास नड़ियाँ हैं और बुरे रक्त

के आने की भी खास नाड़ियां हैं, इसी प्रकार अच्छे विचार इंगला से जाते हैं, बुरे विचार पिंगला से जाते हैं और शान्ति के विचार सुषुम्ना से जाते हैं। जब मनुष्य महासुन्न में जाता है तो यह तीनों नाड़ियां समाप्त हो जाती हैं अर्थात न अच्छे विचार रहते हैं न बुरे और न आध्यात्मक विचार रहते हैं । यह तीनों समाप्त हो जाते हैं।

महासुन्न का नाका लीन।
गुप्त भेद जाय लीना चीन॥

फिर महासुन्न आजाता है अर्थात भँवर गुफा। यहां सविकल्प समाधि से मन की निर्विकल्प समाधि लगती है। अब मैं न सविकल्प समाधि लगा सकता हूँ न निर्विकल्प समाधि। मेरी सहज समाधि जब लगेगी आत्मा की लगेगी। क्यों ? क्योंकि मुझे सत्संगियों के अनुभव से सतगुरु मिल गया है, सच्चा ज्ञान मिल गया है कि मेरे अन्तर जितने अच्छे या बुरे या रजोगुणी, सतोगुणी और तमोगुणी विचार थे यह कुछ नहीं थे किन्तु माया थे। यह थे नहीं मगर भासते थे। इस ज्ञान ने मुझको सविकल्प और निर्विकल्प दोनों से पार कर दिया। अपने जीवन का अनुभव कह रहा हूँ। कोई किसी बात का दावा नहीं। जितना जिस महापुरुष ने जाना वह कह गया। जितना मैंने पाया वह मैं कहता हूं।

आज सुबह कोशिश करने पर भी मैं निर्विकल्प समाधि न लगा सका क्योंकि मुझे यह ज्ञान हो चुका है कि यह मन है नहीं मगर भासता है। यह ज्ञान मुझको चौथे पद में लेगया मगर जिनको अभी तक यह ज्ञान नहीं है और वह मन के रूप रंगों को सच मानते हैं। उनको यह साधन करना लाजिमी है। मैंने तो निर्विकल्प समाधि में जाकर बहुत देख लिया है।

अंध घोर जहां भारी फेर।
सत्तर पालंग जा का घेर।

स्वामीजी ने सत्तर पालंग कैसे कह दिया यह तो वही जानते होंगे। मैं तो इतना जानता हूँ कि जब निर्विकल्प समाधि लग जाती है तो मन क्रिया (Function) नहीं करता, काम नहीं करता। मन के अन्तर जो मन चित बुद्धि और अहंकार हैं यह चारों अपना काम छोड़ देते हैं। यह जो रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण हैं यह तो मन बुद्धि चित और अहंकार के खेल से ही पैदा होते हैं। जब यह खतम हो जाते हैं तो खुद मस्ती (आत्मानन्द) आजाता है। मैं इसमें बहुत समय तक रहा हूँ। सुनाम स्टेशन पर मेरे पास दाता-दयाल आये। मैं उस समय आत्मानन्द (खुद मस्ती) में था। यह क्यों आता है? क्योंकि मैं दातादयाल के रूप के साथ घनिष्ट प्रेम करता था। मैं उनको संत मानता था। किसी आदमी को अभ्यास मिला हुआ है और वह साधक है वह इस महासुन्न में विलीन हो जाता है। जब मन, चित. बुद्धि अहंकार इकठ्ठे हो जाते हैं इनके अन्तर से एक विशेष प्रकार की एनरजी पैदा होती है वह आनन्द देती है। वह आनन्द या भक्ति की दशा में झूमता है और यह राग रागनियां उठती हैं।

झनकारें अदभुत क्या बरनूं।
सुन सुन धुन मन में अति हरषूं।

मन में लय हो जाने के कारण जब उसकी चेतनता गहरी अवस्था की होती है उसमें उसको आनन्द मिलता है। यह मेरा अनुभव है क्योंकि यदि मुझे आनन्द न मिलता तो मैं उस मस्ती में क्यों फिरता जैसे सुनाम में फिरता था। जब मैं धाम में आर्ती करने ताज लेकर गया तो मैं मस्ती में क्यों फिरता। यह अवस्था कब आती है और क्यों आती है? यह उस समय आती है जो मानसिक ध्यान में गुरु के रूप के प्रेम में लगे रहते हैं।

पाँच अंड रचना तहँ कीनी।
ब्रह्मा पाँच ता में हुये लीनी।।

स्वामीजी के पांच अंड और पांच ब्रह्मण्ड का मुझे पता नहीं। मैं समझता हूँ कि हमारी जो पांच इन्द्रियां हैं यह वहां इकठ्ठी हो जाती हैं। जब पांच ज्ञानेन्द्रियों के इकठ्ठे होने का जो रचना का खेल है उसका यह वर्णन है। अंड कहते हैं मन को! मन के साथ पांच ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं। पांच ज्ञानेन्द्रियों का जो कार्य है वही मन है। ब्रह्म और मन बढ़ता है और सोचता है। यह है पांच ज्ञानेन्द्रियों के इकठ्ठा होने की अवस्था का नाम। यह मेरी समझ में आया है। मैं अपने क्रियात्मक जीवन का अनुभव बता रहा हूँ। मैं शब्दों की व्याख्या नहीं करता।

अंडन शोभा वरनू कैसे।
सब्ज सेत कोई पीत वरन से॥

अंड—ज्ञानेन्द्रियों के अलग अलग कार्य होते हैं। जो वस्तु गति करती है उसमें से रंग निकलते हैं। कहते हैं कि हर वस्तु का भिन्न भिन्न रंग होता है। मैं जब साधन किया करता था तो मैंने कम से कम १०० पृष्ठ की डायरी लिख कर दाता दयाल को भेजी थी। १२ १२ घण्टे अभ्यास करके मैंने लिखा था कि मेरी समझ में यह आया है और आपकी वाणी में यह आया है। उन्होंने मुझे २५ पृष्ठ अंग्रेजी में लिखकर भेजे। मुझे याद नहीं कि उन्होंने क्या उत्तर दिया था और न यह याद कि मैंने क्या लिखा था। अब तो मैं सहसदल कँवल, त्रिकुटी, सुन्न महासून्न, भँवर गुफा सबको भूल रहा हूँ। सतलोक को भी भूल रहा हूँ। मगर यह है ठीक जो स्वामीजी ने लिखा है। उनकी वर्णन शैली और है और मेरी ओर है।

लख लख अरब तास परमाना।
यह अंड अति तुच्छ दिखाना॥

यह जो हमारे मन का अंडा है जिसको हम देखते हैं इसी तरह ऊपर भी महासुन्न का देश है। तुम स्वयं हिसाब लगा लो। पृथ्वी से जल कितना बड़ा है! जल से अग्नि, अग्नि से वायु और वायु से

आकाश कितना बड़ा है ! यह तो विराट पुरुष की रचना की दशा है। अब कासमिक किरणें जो मन की आशायें हैं यह बहुत ही अधिक है। स्वामीजी ने लख-लख अरब कैसे कहा यह तो उनको पता होगा मगर अनुमान से मेरी बुद्धि मानती है कि ऊपर का महासुन्न का जो लोक है उसका कितना बड़ा विस्तार होगा, जब कि हमारे मन के विस्तार का पता नहीं है। हमारी आशायें कितनी लम्बी चौड़ी हैं। वह महासुन्न दसबां द्वार जो हैं वह कितना लम्बा चौड़ा होगा।

या में ब्रह्म व्यापक होई।
ताकी गति कहे कितनी होई ॥

वह कहते हैं कि जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्यापक है, जो इन सब को गति देता है उसकी गति कितनी होगी। तुम्हारे अन्तर जो तुम्हारा मन है उसमें तुम कितनी रचना करते हो, कितने विचार उठाते हो ! कितनी विद्यायें तुम्हारे मन से निकलती हैं ! वेद मन से निकले। कुल साइंस मन से निकली। कुल शास्त्र मन से निकले। सारा ज्ञान मन से निकला। तुम्हारे मन के अन्तर से इतना ज्ञान निकला तुम अपनी बावत सोचो। इससे अनुमान लगाओ कि तुम्हारे मन के अन्तर जो ब्रह्म है वह कितनी बड़ी रचना करता है। वह जो ऊपर का बड़ा ब्रह्म है जिसकी हम अंश हैं वह कितनी रचना करता होगा ! उसकी गति को कौन जान सकता है।

ताका ज्ञान पाय यह ज्ञानी।
फूले मन में हुए अभिमानी ॥

मनुष्य इस अवस्था को पाकर यह समझता है कि में ब्रह्म हूं। उस अवस्था में जब जीव आता है तो कहता है कि मेरे सिवाय कोई नहीं। मैं ही ब्रह्म हूं। स्वामीजी कहते हैं कि यह सब अभिमानी हैं।

वह मालिक हमारा आदि है। उसके सम्बन्ध में आगे चलकर वर्णन करूँगा। यह तो केवल तुम्हारे मन का खेल हूं। जो आत्मा का खेल है उसकी तो बात ही निराली है। इस मन के खेल में आकर

मनुष्य में बड़ा भारी अभिमान आजाता है। उसमें क्रोध आजाता है और कह देते हैं कि मैं तेरा सर्वस्व नष्ट कर दूँगा। तुम्हारा खून पी जाऊँगा ! यद्यपि उसमें यह शक्ति है या नहीं कि वह किसी का खून पी सकता है या किसी का सर्बस्व नष्ट कर सकता है मगर वह अपने मन के अभिमान में आकर क्या-क्या करता है। ऐसे ही यह मन कहता है कि मैंने सब कुछ पालिया है। दुनियां में मैं ही सब कुछ हूँ और कुछ नहीं। इसलिये स्वामीजी कहते हैं कि जिस तरह तालाब में रहता हुआ मेंढक तालाब को ही समुद्र समझता है ऐसे ही इन ब्रह्म कहने वालों की दशा है। वह मालिक तो अपरम्पार है। उसकी गति को जानना कुछ और चींज है।

क्या करें यह हैं लाचार।
वह तो देश न देखा सार॥

यह मन के चक्कर से बाहर नहीं गये। जो आत्सा का देश है जो प्रकाश और शब्द का देश है जो सतलोक है, उसको तो उन्होंने देखा ही नहीं। वह लाचार हैं। उसको दिखाने वाला सतगुरु है। सतगुरु दसवें द्वार से आगे मिलता है। गुरु त्रिकुटी में है। दसवें द्वार से आगे सतगुरु मिलता है वह शब्द स्वरूपी गुरु है और बाहर में वह शब्द और प्रकाश का भण्डार है सतलोक है। मैं इस रास्ते पर जा नहीं सकता था क्योंकि मैं तो दातादयाल के रूप में फँसा हुआ था मगर मैं चाहता अवश्य था कि मैं अपने घर जाऊँ। इसका पता नहीं लगता था। दातादयाल ने इस तरह समझाया नहीं जिस तरह मैं समझता हूँ। परिणाम यह निकला कि बात मेरी समझ में नहीं आई। मुझे समझ देने के लिये मुझे दातादयाल ने गुरु बनाया। जब सत्संगियों ने कहा कि मेरा रूप उनके अन्तर प्रगट होता है और मैं नहीं होता तो मुझे पता लगा कि मन में बड़ी भारी शक्ति है। तुम बाबा फकीर को बना लेते हो, पर्चे हल करा लेते हो, नदी में डूबने से बच जाते हो आदि आदि। तो वह कौन है। वह तुम्हारा मन है।

तुम्हारे मन में कितनी भारी गति है। इसलिये मुझको वह जो सबुद है मालिक का, उसकी खोज हुई। अब मैं उस खोज में चलता रहता हूं।

बिन देखे कैसी परतीत ।
उन नहिं जानी अचरज रीत ।।

मैं यह अगला देश देख नहीं सकता था। मैं तो उस मेंढक की तरह यह समझता था कि मुझमें सिद्धि शक्ति आगई। यही सब कुछ है। असली घर भूला हुआ था मगर अब देख लिया।

इसी ब्रह्म को जान अपार।
भूले मारग करें विचार ।।

शास्त्रों ने तो ब्रह्म के तीन रूप बताये हैं मगर कबीर साहब ने ब्रह्म के बहुत रूप बताये हैं। सबल ब्रह्म जो सहसदल कँवल में रहता है विराट पुरुष। एक शुद्ध ब्रह्म जो महासुन्न में रहता है उसके आगे आता है पार ब्रह्म जो सोहंग पुरुष में रहता है। इसके आगे आता है शब्द ब्रह्म जिसको नाम कहते हैं। दुनियां पांच नाम को नाम समझती है। मुंह से राधास्वामी राधास्वामी कहते रहते हैं कि नाम मिल गया।

नाम रहे चौथे पद माँहीं।
यह ढूँढे त्रिलोकी माहीं।

दातादयाल कहा करते थे कि फकीर ! राधास्वामी मत को समझने वाली दुनियाँ अभी पैदा नहीं हुई। शायद तुम जीवन में समझ जाओ। वह शायद का शब्द कहा करते थे। इस राधास्वामी मत के समझने की यह गुरु पदवी मुझे मिली थी।

अब इनको कैसे समझाऊँ।
वह नहिं मानें चुप रहाऊँ ।।

अब जो कुछ मैं कहना चाहता हूं उसे सुनने को कोई तैयार नहीं मैं यों ही बात कह देता हूं। कौन समझेगा मेरी बात को ? किसी

को इस रहस्य के जानने की आवश्यकता नहीं। क्या तुम लोग इ रहस्य के जानने के लिये मेरे पास आये हो? नहीं, अब चुप रहन में भलाई है मगर मेरा कर्म है, मैंने प्रण किया था कि अपना अनुभव कह जाऊँगा।

राधास्वामी कही सुनाय।
तीनों परदे दिये लखाय॥

इन तीनों दर्जों या स्थानों का वर्णन सबल ब्रह्म व शुद्धब्रह्म का वर्णन है। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण या ओंकार का वर्णन है इससे आगे बिन्दु का स्थान है। वह बिन्दु वास्तव में तुम्हारा मन है उससे सारी रचना होती है। ऊपर एक लोक है जिसमें से कौसमिक किरणें निकल-निकल कर अणु बनते हैं जिनमें से एलैक्ट्रोन्स और प्रोटोन्स निकलते हैं और कुल रचना होती है। वह जो असली देश है आत्मिक देश वह इस बिन्दु से तथा महासुन्न से आगे है। उसका वर्णन आगे आयेगा।

भक्तों के चरित्र गाने की महिमा की कथा

संसार को सद्मार्ग पर लाने और भक्ति भाव सिखाने के अनेक ढंग हैं। एक यह है कि मनुष्य खुद भक्ति का पूर्णरूप बन जाय। और लोग उसके निजी जीवन के निज उदाहरण से खुद बखुद सार तत्व के प्रकाश की छाया प्राप्त करें और उसी प्रकार काम काज करते हुए परमार्थ की कमाई हासिल करें। दूसरा यह है कि वह उपदेश के आधार पर लोगों को सद्विचारों का प्रचार करें और उसके मानसिक विचार अथवा ख्याल की धारें सूर्य के प्रकाश के समान चारों ओर फैल जाँय। तीसरा तरीका यह है कि

यह भक्तों की महिमा का गीत राग गाता रहे। और लोगों को उनके पुनीत और पवित्र चरित्र सुना सुना कर सद्मार्ग पर लायें। अन्य प्रणालियों में से यह तीन अधिक प्रचलित हैं।

इसमें से पहला सबसे श्रेष्ठ और सर्वप्रिय है। मनुष्य किसी की बात नहीं सुनता। जो कुछ करते देखता है उसी पर अपना ध्यान जमाता है। और साधन और अभ्यास ही को देख देख कर उनकी सहायता से एक परिणाम पर पहुंचने की कोशिश करता है। उपदेश देना या शुभ विचारों का प्रचार करना बुरा नहीं है। पर इसका प्रभाव इतना नहीं होता। और फिर वहां साधन सम्पन्न व्यक्तिगत का प्रश्न आजाता है। क्या उपदेश करने वाला किसी का नौकर है? यदि नौकर है तो उसका संसारी जीवन निकृष्ट बन्धन का जीवन है और वह इतना लाभप्रद और पवित्र नहीं हो सकता। उपदेश सुनने से पहले संसार उपदेश करने वाले के निजी कर्तव्य, उसके साधन और अभ्यास को देखने का ज्यादा इच्छुक रहता है। और इसलिये यदि कोई उपदेशक या धर्म प्रचारक ऐसा है कि वह उपदेश भी देता है और हद दर्जे का साधन सम्पन्न भी है, तो वह अधिक काम कर जाता है! तीसरे व्यक्ति में कर्तव्य है। उसका जीवन धर्मनिष्ट है। वह न तो किसी को उपदेश देता है न यह कहता है कि ऐसे कर्म करो, बल्कि जो मालिक के प्रेमी रहे हैं या मौजूद हैं उनके चरित्रों की भक्ति के रूप में शिक्षा देता है। ऐसे मनुष्य का उपदेश अधिक प्रभाव डालता है। क्योंकि वह अपने आप अपने तौर पर, अपने (तर्ज अमल) से उपदेश नहीं करता। तुमको परम पुनीत और सत पुरुषों के चरित्र सुनाता है। परिणाम यह होता है कि तुम आप उनको सुनकर प्रसन्न होते हो और सहज में तुम में भक्ति और प्रेम के विचार दाखिल होते जाते हैं। जो किसी न किसी समय तुमको मालिक का भक्त बना कर छोड़ेंगे। और इस दृष्टि से यह मनुष्य बड़ा उपकार करता है।

मामूली उपदेशक बहुत हैं। जिनको सिवाय उपदेश देने और सलाह बताने के दूसरा काम नहीं। क्योंकि संसार में इससे सरल और कोई काम नहीं। उदाहरण के रूप में देखो यदि तुमको कोई बीमारी है तो जिस जिस से तुम मिलोगे हर व्यक्ति एक न एक नुसखा तुमको बतायेगा। चाहे वह हकीम या डाक्टर न हो। इसी प्रकार धार्मिक उपदेशक भी संसार में बहुत हैं। कोई उनकी सुनता है कोई नहीं सुनता। एक कहता है चलो वह तो यों ही बातें बनाता फिरता है। दूसरा कहता है हाँ जी यह तो रोटी कमाने का ढंग है, और कुछ नहीं। पर एक तीसरा व्यक्ति जो सचाई और सादगी का जीवन व्यतीत करते हुए तुमको भक्तों के चरित्र सुनाता है तो वह चाहे काम तो उपदेशक का ही करता है पर वह अपने अस्तित्व ममत्व को पेश नहीं करता। इसलिये तुम खुशी से उसकी सुनते हो। और सोचने के लिये विवश होते हो। जब तक कोई व्यक्ति बहुत आला दर्जे का न हो पूर्ण न हो, सर्व साधारण की दृष्टि में वह नहीं जचता। इसके अतिरिक्त अस्तित्व और मरतत्व अहंभाव का पेश करना कुछ बहुत अच्छा भी नहीं है, शोभा भी नहीं देता। मनुष्य को इष्ट और आदर्श दिखाना उचित है। कथा सुनाने वाला यह आदर्श एक अति उत्तम ढंग में पेश करता है। और मजे की बात यह है कि बात बात में उसकी शख्शियत और अहमपना काम करता है। पर तुम भूलकर भी नहीं समझते कि वह जो कुछ कह रहा है इसमें उसकी जात छिपी हुई रहती है। इसलिये उसकी बात सुनी जाती है और उसकी बात सोची जाती है। और जिस तरह माता बीमार बालक को कड़वी दवा मीठी चीज में मिला कर खिला देती है वैसे ही यह कथा सुनाने वाला तुम्हारे साथ बर्ताव करता है।

संसार में नादान से नादान मनुष्य ख्याल करता है कि ढ़ाई अक्ल में से दो उसके हिस्से में आई हैं। बाकी आधी औरों को मिली है। इसलिये किसी समय किसी की बात सुनी तक नहीं

जाती। पर जब वही बात कथा प्रसंग में आजाती हैं तब उसको ध्यान और विचार के साथ सुनते हैं। यहाँ वह भूल जाते हैं कि ढाई अक्ल में से दो हिस्सा उनके बाँट आई है। बल्कि वे प्राचीन इतिहास होने के कारण उनके लिये एक अति रोचक मनोहर और शिक्षाप्रद बन जाती हैं। प्राचीन इतिहास के मान और बड़ाई का आदर करना मनुष्य का स्वभाव है। जो बीत गया वह अच्छा जो वर्तमान है वह बुरा और जो आबेगा वह कहीं अधिक बुरा होगा। यह एक साधारण बात है जो तुम हर जगह सुनते होगे। हर व्यक्ति अपने और अपने बड़े बूढ़ों के समय को अच्छा कहता है। अपने समय को कोसता रहता है। और आने वाले समय की बुराई का ध्यान रखता है। यह एक साधारण नियम है। और इसलिये जहां कोई बुद्धिमान वर्तमान और आने बाले समय का ख्याल दिल से हटा कर लोगों को पुरानी बातें सुना कर अपना अर्थ सिद्ध कर लेता है। और सत्य, प्रीत और प्रतीत का भाव उत्पन्न हो जाता है। जिसके फलस्वरूप धर्म की बाढ़ सी आजाती है। सब उसके वशीभूत होने लगते हैं।

हर धर्म में तीन स्तम्भ होते हैं। अव्वल कर्म, दूसरे आध्यात्म, तीसरे महात्माओं की कहानियां। यह तीनों वास्तव में एक हैं। तीन नहीं। हां एक चीज के तुम तीन दृष्टिकोण चाहे कहलो। मगर वह भी बिल्कुल सही नहीं है। जो किया जाता है या जिसके करने की शिक्षा दी जाती है वह कर्म है। कर्म क्यों करना चाहिये? इसका क्या लाभ है? इन प्रश्नों का उत्तर और उसकी व्याख्या, फिलसफा (आध्यात्म) है। जो इस कर्म से पृथक नहीं है। क्या किसी ने ऐसा कर्म किया था या अब कर रहे हैं। इन प्रश्नों के उत्तर महात्माओं की कथाओं में मौजूद है। लोगों को संसारी काम धन्धों से इतना अवकाश कहाँ है कि वह सवाल के हर दृष्टिकोण को खुद समझ कर विचार करें। सबको पेट का दुख है। कलयुग में विशेष

रूप से इस दुख ने अपने हाथ पांव बढ़ा लिये हैं। बच्चा बच्चा दुखी है। छोटे से छोटे आदमी को चिन्ता है। जरूरतें ज्यादा हैं। खर्च करने की कमी है। माया का विस्तार फैला हुआ है। ऐसे समय में अधिक व्याख्या और विस्तार पूर्वक कहना व्यर्थ है। और इसलिये साधारण उपदेश और जाती मिसाल का फल नजर न आवे तो धर्म के प्रचार का सर्व श्रेष्ठ साधन यह है कि महात्माओं के जीवन चरित्र सुनाये जावें। कथा वार्ता को किस्से कहानी के रूप में सुनना कुछ मनुष्य का स्वभाव है। हम जब बालक थे किस्सा कहानी सुना करते थे। अब जवान हैं नाविल व उपन्यास वगैरह पढ़ते रहते हैं। और जब बूढ़े होंगे तब भी उनके सुनने से जी न भरेगा। इसलिये उपदेश का तीसरा ढंग सदा लाभप्रद, शिक्षादायक और प्रभावशाली होता है। और किसी को यह बुरा नहीं लगता। और बुद्धिमान चतुर उपदेशक सहज में अपना काम निकाल लेजाते हैं और पथ-भ्रष्टों को सद्मार्ग पर डाल देते हैं।

और इसके अतिरिक्त एक महान लाभ और भी होता है। वह क्या है? वह यह है कि तुम को प्राचीन महात्माओं के सतसंग करने, उनसे वार्तालाप करने और उनसे मिलने मिलाने का मौका हाथ आता है। यह न समझो कि मिलना मिलाना केवल शरीर द्वारा है। इनके बचनों को सुनो। इनकी बातों पर ध्यान पूर्वक विचार करो। आत्मिक दृष्टि से तुम इनसे मिल रहे हो। क्योंकि इनके अस्तित्व का यदि कहीं पता है तो इनके बचन हैं। इन्ही बचनों के रूप में तुम इनका असली दर्शन कर सकोगे। यदि तुम रात दिन कबीर साहब की वाणी का पाठ करते हो तो इसका अर्थ यह है कि तुम इनसे मिलते और इनके विचारों से लाभ उठाते हो। इसलिये यदि कोई पुरुष ऐसा मिल जाय जो महात्माओं के चरित्र सुना सुना कर सद्मार्ग पर लावे तो ध्यान देने से तुम्हारी समझ में आजायगा कि वह तुमको प्राचीन पुरुषों से मिलने का अवसर प्रदान कर रहा

है। और यह संयोग ऐसा है जिशमें भूत और वर्तमान दोनों इस प्रकार मिलाकर एक कर दिये जाते हैं कि उनके बीच लेशमात्र भी अन्तर नहीं रहता। और तुम अपनी आत्मिक और दिव्य दृष्टि से देख सकते हो कि प्राचीन समय के महात्मा कैसे थे। उनके विचार क्या थे। किस प्रकार अपने बिचारों का प्रचार किया था। यह बहुत बड़ी बात है। और यह ही एक बात ऐसी है जो तुम्हारे दृष्टिकोण से उसको सर्वप्रिय और प्रतिष्ठा के योग्य बनाने के लिये काफी है। वह मनुष्य धन्यवाद का पात्र! वह जाति धन्य! वह देश धन्य है, और उसके अहसान का बदला कभी चुकाया नहीं जा सकता। चाहे वह अपनी जिभ्या से बात चीत करता सही, पर वास्तव में उसकी वाणी तुम्हारे पूर्वले महात्माओं की है। जिसका सुनना और समझना तुमको उचित है। बिछड़े को मिलाने वाला, आत्माओं को गुथ कर एक करने वाला यह मनुष्य है, जो महात्माओं और भक्तों की कथायें सुना सुना कर तुमको इनके पथ प्रदर्शन का आदेश देता है। वह अपनी कुछ नहीं कहता। दूसरों की कहता है। और वे दूसरे लोग भी वह जिनको तुम मान और आदर की दृष्टि से देखते हो। धर्म का सारांश वेद और स्मृतियों से नहीं लग सकता है। क्योंकि इनमें भिन्नता है, एक ऋषि दूसरे से भिन्न मत रखता है। धर्म वह पथ है, मार्ग है, जिस पर प्राचीन महात्मा चले हैं। और उन्हीं के पद चिन्हों पर चलकर तुम भी धर्मात्मा बनकर धर्म की पराकाष्टा, मंजिले मकसूद पर पहुँचोगे। और यदि तुमको इन महात्माओं का कहीं दर्शन हो सकता है तो वह ऐसे ही पुरुषों की वाणी और लेखनी, द्वारा हो सकता है। जिन्होंने प्राचीन इतिहास संग्रह करके इनकी साक्षी दी है अथवा उसको सुनाया है।

नाभाजी भक्तमाल के रचयिता थे। भक्तमाल हिन्दुओं की वह परम पुनीत और धार्मिक पुस्तक है जिसमें केवल भक्तों के चरित्रों की ही व्याख्या की गई है और जहाँ तक उनको पता चला उन्होंने

उन्होंने एक एक भक्त के चरित्र को संग्रह करके इस सर्व विख्यात पुस्तक में दाखिल कर दिया है।

श्री नाभाजी का असली नाम नारायणदास है। जो इनके गुरुओं ने प्रदान किया था। इनकी जाति की बावत अनेक प्रकार को कहावतें प्रसिद्ध हैं। इनकी पैदायश हनुमान वंश में बताई जाती है। जाति का छिपाना व्यर्थ है। पर हिन्दुओं में सदैव से इस पर पर्दा डालने और छिपाने का यत्न किया जाता रहा है, और नीचे कुल के महात्मा को ऊँचे कुल में प्रगट करने की बड़ी कोशिश की जाती है। और सबको ब्राह्मण ही बनाकर प्रगट किया जाता है। इन व्यर्थ की बातों में क्या रक्खा है। कबीर साहब की वाणी है—

"जात पांत पूछे ना कोई। हरि को भजे सो हरि का होई।"

जात न पूछो साध की, पूछ लीजिये ज्ञान।
काम पड़े तलवार सों, पड़ा रहन दो म्यान॥

कबीरजी मुसलमान जुलाहे थे। इनको ब्राह्मणी का पुत्र बनाया गया। और स्वामी रामानन्दजी के आशीर्वाद का फल जताया गया। रैदासजी चमार थे इनको पहले जन्म का ब्राह्मण सावित करने की कोशिश की गई। इस कोशिश में कहाँ तक सफलता प्राप्त होती है या हो सकती है हर व्यक्ति जानता है। कमल का वृक्ष चाहे गड्ढे में पैदा हो या सरोवर में, है तो वह कमल। किसी दूसरे नाम से हम उसको नहीं पुकार सकते। दीपक चाहे ब्राह्मण के घर का हो। चाहे चांडाल के घर का हो। वह प्रकाश करता है। प्रकाश करना उसका स्वभाव है, जिनको प्रकाश की आवश्यकता है वह मजबूर होकर और विवश होकर उससे लाभ उठायेंगे। जिनको जरूरत नहीं है उनके लिये इसका प्रगट होना एकसा है। आखिर तुम क्यों उसको व्यर्थ में ऊँच जाति और ब्राह्मण का वंश सावित करते हो।

उत्तम और चान्डाल घर इक दीपक उज्यार।
तुलसी मते पतंग के सब ही ज्योति इकसार॥

इनकी नीच कुल में उत्पत्ति से इनके तेज में फर्क क्या आता है। यह आत्मिक सुर्य हैं। आत्मा के प्रकाश को प्राप्त करने वाले खुद व खुद इनकी ओर आकर्षित होंगे। इनको रोक कौन सकता है? दीपक जला नहीं कि परवाना उस पर टूटा नहीं। वह कब दीपक की जात पाँत पूछने लगा।

यह आत्मिक गुलाब है, जहाँ खिले। आत्मा के इच्छुक भौंरे और मक्खियां चारों ओर से उनके ऊपर मडलाने लगते हैं। इनको ऐसे व्यर्थ के सवालों के पूछने का अवकाश ही कहां है। कि यह गुलाब किसी ब्राह्मण के बाग का है या चान्डाल के। जात पांत से इनकी असलियत में फर्क कब आता है। जो इस व्यर्थ बात की ओर ध्यान देते हैं वह छोटे पात्र हैं। छोटे दिल के मनुष्य हैं। और वह परमार्थ से खाली रहते हैं।

नीच नीच सब तर गये सन्त चरण लौलीन।
जाती के अभिमान में डूबे सकल कुलीन॥

जो कुछ हमको देखना है केवल इतना ही है कि इसका ध्येय, इष्ट क्या है?

जिनको है मालिक का प्यार। हिन्दू और तुरक दोऊ इकसार।
रूप रंग इनका मत देख। श्रद्धा भाव निशाना पेख॥

ऐसे सत पुरुष, महात्मा मालिक के रूप हैं। उनकी निसबत जात पांत का सवाल करना उनका अनादर है उपेक्षा है।

भानु रूप मालिक सुन भाई। नर देही में रहा समाई।

इनके काम को सुफल होने के लिये उच्च कुल की सनद की आवश्यकता नहीं। न यह इसके पराधीन हैं। जहां सूर्य उदय हुआ। कोई यह नहीं पूछता हे सूर्य तेरा कुल क्या है? सब इसके तेज और प्रकाश का लाभ उठाते हैं। और इसके पैरों पर सिर रखने को विवश होते हैं। क्या कभी कोई महात्मा नीच कुल में पैदा होने से अपने mission जीवन के mission ध्येय में असफल हुआ है।

इस पर ध्यान दो और स्वयं तुम्हारे तर्क छिन्न भिन्न होकर ऐसे अलोप हो जायेंगे जैसे सूर्य की किरणों के तेज से घटाटोप बादलों का अंधेरा तितर बितर हो जाता है।

नाभाजी हनुमान वंश के थे। हमारे यहाँ की डोम जाति अपने आपको हनुमान वंश से बतलाती है। यह जाति पूरब में धरकार या दहरकार भी कहलाती है और इनको कोई नहीं छूता। जब कोई मरता है यह उनके जलाने को आग दिया करते हैं। यह इनका काम है। राजा हरिश्चन्द्र इसी जाति के हाथ बनारस में बिके थे। और बनारस में यह लोग बड़े मालदार हैं।

पर नाभाजी के इतिहासकार जिस तरह इस हनुमान वंश का अर्थ लगाते हैं वह भी सुन लीजिये। वह पृथ्वी और आकाश के कुलावे मिलाते हुए इस प्रकार व्याख्या करते हैं। तैलंग देश में गोदावरी के उत्तर में राम मद्राचल एक पर्वत है, वहां रघुनाथजी ने गंडक वन में कुछ दिनों के लिये विश्राम किया। वहां रामदास नाम का ब्राह्मण महाराष्ट्र हनुमान जी का अंश, औतार हुआ था उसकी छोटी सी पूंछ भी थी। बड़ा भक्त था। आर्य छन्द में पचास हजार श्लोक रामचरित के मरहठी भाषा में रचे थे। नाभाजी उस वंश में पैदा हुए थे। पर इसके बाद के हालात व दंत कथायें जो हिन्दुओं में प्रचलित हैं, जोर के साथ इसका विरोध करती हैं। जिसका वर्णन आगे चलकर करूँगा।

नाभाजी अंधे थे। देश में अकाल पड़ा। इनका पिता बचपन के समय में भीख मांगने गया था रास्ते में ही मर गया। माता ने बेदर्दी से इनको बेकाम समझ कर जंगल में डाल दिया। आयु थोड़ी थी। पर यह साहब कमाल पुरुष किसी विशेष अभिप्राय के हेतु प्रकृति की ओर से संसार में प्रगट हुआ था। बेकसी व दीनदशा में एक जगह बैठे हुए थे। मालिक को इनकी रक्षा और सहायता मंजूर थी। कील्हजी और अगरदास साधु वहाँ होकर गुजरे।

इसको देखकर पूछने लगे तू कौन है। बालक ने कहा तुम क्या पूछते हो। यदि शरीर की दृष्टि से तुम्हारा सवाल है तो वह क्षण भंगी है। आज है कल न होगा। पांच तत्व का बना है। जब बिगड़ेगा तत्व अपने-अपने भंडार में चले जायेंगे। इसकी बाबत मैं क्या उत्तर दूं। यदि आत्मा की दृष्टि से सवाल है तो उसकी जात-बांत नहीं हैं। न इसमें नाम रूप है। यहां भी तुम्हारे प्रश्न का क्या उत्तर दिया जाय। साधू इस उत्तर को सुनकर चकित होगये। समझे कोई बहुत बड़ा संस्कारी जीव है। लोगों से उसकी जाति का हाल पूछा। मालूम हुआ यह जाति का डोम है। पर यह वैष्णव महात्मा थे। स्वामी रामानन्द और कबीर साहब के अध्यात्म विचारों की लहरें देश व्यापी हो रही थीं। इन पर भी इसका प्रभाव था। लड़के को अपने साथ लिया ध्यान से देखने पर मालूस हुआ कि उसकी आंख के पलक खुले नहीं हैं। यदि इनको चीरा दिया जाय तो क्या अजब यह देखने लग जाय। आंखें खोल दी गईं। आँखों पर जल छिड़का गया। वह देखने लगे। और धीरे-धीरे जो दृष्टि की शक्ति दबी पड़ी थी। खुल गई। यह इनको अपने साथ लाये। और जाति का ख्याल करके इनको चेला तो बना लिया। पर गलताजी, जो अम्बर में जयपुर के इलाके में है, मन्दिर के बाहर झाड़ू देनें का काम सुपुर्द किया। और नरायणदास नाम रक्खा। और वैष्णवों की पत्तलों की बची कुची झूंठन इनको खाने को मिलने लगी। नाभाजी भाग्य पर राजी रहे। और वहां रहकर साधु सेवा करते, झाड़ू लगाते और संतों के सीत परशाद से अपना पेट भर कर जीवन व्यतीत करते। इस प्रकार इनको सतसंग का भी अवसर मिल गया और भक्ति के संस्कार पैदा होने लगे।

एक दिन की बात हैं यह मन्दिर के बाहर झाड़ू दे रहे थे। उग्रदास जी चबूतरे पर बैठे हुए ध्यात में थे। इनको यह प्रतीत

हुआ कि उनके किसी शिष्य पर कष्ट पड़ गया है और उसकी नाव नदी में डूब रही है। इनको मन ही मन में दुख हुआ। उसी समय नाभाजी बोल उठे। महाराज! आप भगवान का ध्यान करें। नाव बच गई। डूबी नहीं! मालिक ने रक्षा की। अब इसके डूबने का भय नहीं रहा। यह सुन कर उग्रदासजी की आंखें खुल गईं।

कोई इस प्रकार की बातों को गलत न समझे। जैसे स्वप्न की बातें कभी-कभी सच्ची होती हैं। वैसे ही ध्यान के समय भी कभी-कभी जीवन के दृश्यों का मन पर ठीक-ठीक प्रभाव पड़ जाता है। जो मन के निर्मल हैं और जिनके मन का दर्पण शुद्ध होगया है वह इसको भले प्रकार से अनुभव कर सकते हैं। आत्म विद्या के जानने वाले इसको ख्याल की सीमा से परे नही जानते। ऐसे दृश्य साधारण लोगों पर भी बीतते रहते हैं। महात्माओं का तो कहना ही क्या है। और यह संसार की सब जातियों में साधारण सी बात है। जो आध्यात्म धन से महरूम हैं, अभागे हैं, वह इनको मिथ्या समझते हैं। पर यह इनकी बुद्धि और स्मरण शक्ति का दोष है। योगी की दिव्य शक्ति को सब कोई जानता है। इस कारण इसकी व्याख्या व्यर्थ है।

उग्रदासजी चकित हुए! और चित्त में प्रसन्न होकर कहने लगे। वत्स! तेरे अन्तर की आँख खुल गई है। जा अब झाड़ू देने के काम से तुझको मुक्त किया गया। और उस समय से अन्य साधुओं की भांति इनके साथ सलूक होने लगा।

धीरे धीरे नाभाजी की दशा बदल गई। आध्यात्म का रंग इतना गहरा जमा कि वर्णन नहीं किया जा सकता। और हनुमान वंश का लड़का अब मान और संस्कार का पात्र बन गया।

सतसंग में बहुत समय बीत गया। नाभाजी को भक्तों के चरित्र सुनने का बड़ा चाव था। चूंकि गलताजी में इन्होंने कुछ लिखना पढ़ना सीख लिया था और रामानुज सम्प्रादा के फलस्वरूप जात-

पांत की जड़ कट गई थी। और कबीर साहब के घनघोर शब्दों की ध्वनि हर जगह पर गूंज रही थी, यह भजन वगैरा भी कहने लगे। और जिस समय अपने भजन गाने लगते एक समां बँध जाता था। मनुष्य चकित रह जाते थे। गुरु ने यह दशा देखी प्रसन्न होकर कहने लगे। नारायणदास ! क्या अच्छा होता यदि तुम भक्तों के चरित्र गाकर सुनाते। नाभाजी बोले प्रभो ! भक्तों की महिमा नारद, शेष शारदा भी वर्णन नहीं कर सकते, मेरी क्या शक्ति है जो साहस करूँ। गुरु ने कहा, मालिक तुम्हारी सहायता करेगा। और तुम अपनी दिव्य दृष्टि से आकाश मंडल में भक्तों के चरित्रों को देख सकोगे। जगत के उद्धार के लिये, संसार के उपकार के लिये और भक्तजनों के भक्ति भाव को उत्तेजन करने हेतु इस कार्य को साथ में लो। तुम से श्रेष्ठ इस काम के योग्य कोई अन्य व्यक्ति नजर नहीं आता। नाभाजीं ने गुरु को नमस्कार किया और यह कठिन काम अपने हाथ में लिया।

नाभा जी हिन्दी भाषा के विद्वान थे। कबीर साहब के बचन विशेष रूप में उनकी जिभ्या पर रहते थे। पर जहाँ कबीर साहब की बाणी सरल और देहातियों की बोलचाल में थी। इनके बचन बड़े मनोहर, पुनीत और बड़े से कठिन हैं। पर उन्होंने बड़ी मेहनत और परिश्रम करके इसको कर ही डाला। पुस्तक बनकर तैयार हुई। उन्होंने गुरू को अर्पण की। जिसने सुना प्रशंसा की। हर ओर से बाह-बाह की आवाज आने लगी। और वह पुस्तक भक्तमाल के नाम से प्रसिद्ध हुई।

जब किताब पूर्णरूप में खतम होगई, उस समय नाभाजी अपने गुरु के साथ बनारस में आये। वहां कई जगह भक्तमाल की कथा सुनाई गई। जिन्होंने सुना विहवल होगये, गद् गद् होगये। और यह सम्मति हुई कि सब वैष्णव साधुओं को इकठ्ठा करके उनसे इसको सम्पूर्ण करने की राय लीजाय। इस उद्देश्य से साधुओं का

भंडारा किया गया। और सबको निवेदन देकर बुलाया गया। गोस्वामी तुलसीदास जी निमंत्रण पाकर हँसे। और कहने लगे डोम के भंडारे में मैं कैसे जाऊँ ! यह समाचार नाभा जी को मिला।

भंडारे का समय होगया। वैष्णवों में विशेषकर जो रामानन्द जी और कबीर साहब के पंथों में थे, जातपांत का इतना विचार नहीं किया जाता था। सब साधू बड़े हित चित के साथ भंडारे में सम्मिलित हुए। जब गोस्वामी तुलसीदासजी ने देखा कि सब भंडारे में चले जारहे हैं। उनको लज्जा आई सोचने लगे। भक्ति मार्ग में जात पाँत का अभिमान बुरा है। मैं बड़ा घृणित हूँ, अयोग्य हूं, जो ऐसा दुराग्रह करके नहीं गया। चित्त में लजायमान होकर सबके पीछे यह भी गये। साधू पंगत में बैठ चुके थे। जगह नहीं थी। यह वहां बैठ गये जहां सबके जूते उतर रहे थे। रोटी हाथ में लेली। दाल के लिए जब कोई दौना न देखा तो नाभाजी का जूता जो वहां पड़ा था उसमें दाल लेली। जब खाने का समय आया और सब लक्ष्मी-नारायण का नाम लेकर भोग लगाने को तत्पर हुए। गोस्वामीजी उसी जूते में खाने को तैयार हुए। कहते हैं दो ग्रास खाये। अभी तीसरा मुख में जाने को ही था कि नाभाजी की दृष्टि पड़ गई। शीघ्र ही हाथ पकड़ लिया। तुलसी तुम धन्य हो ! बस सारी भक्ति तुमको ही नहीं लेनी चाहिये। औरों को भी कुछ छोड़ दो। तुलसी-दासजी के नेत्रों से प्रेम अङ्ग फूट फूट कर उमड़ रहा था। शीश नवा लिया था।

भंडारा होगया। भक्तों ने भक्त माल की कथा सुनी। जहां-तहाँ संशोधन किया गया। और देखो नाभाजी ने तुलसीदासजी को उस माला का सुमेरु बना दिया, और देखो अब इनके भक्तिभाव का संसार अनुग्रही है, कायल है।

भक्तमाल नाभाजी के जीवन में ही सर्वप्रिय हो चुकी थी। सैकड़ों वर्ष उसका प्रचार रहा। करोड़ों मनुष्य उसके प्रताप से

भवसागर तर गये। इस समय में उनका काव्य बहुत कम मनुष्यों की समझ में आता है। इस हालत को देख कर स्वामी प्रयादासजी ने उसकी टीका की और उसका अनुवाद बाद में लाला लालजीदास कायस्थ साहब ने १२५८ हिजरी में किया। जो सरल और स्पष्ट है। तीसरा अनुवाद लाला गुमानीलाल साहब कायस्थ साकिन रोहतक ने सन १८९८ में किया। और एक आध प्रेमी सज्जनों ने भी इसको फारसी और उर्दू में कुछ कुछ लिखा। अन्त में लाला तुलसीराम साहब अग्रवाल ने इसको पूर्ण रूप में तरतीब दी। जिसको कसरत से पढ़ा जाता है। मैं निजी तौर पर इन सब महानुभावों का कृतज्ञ हूँ। पूर्ण पुस्तक तो भला में क्या लिखता। मुझ में ताकत ही क्या है। कुछ-कुछ कभी इनकी पुस्तकों से लेकर लोगों को सुनाता रहता हूं। ताकि असली भक्तमाल के पढ़ने की ओर लोगों की रुचि हो। मैंने बाद में भक्तमाल को पूरा भी लिखा है।

नाभाजी की कविता बड़ी मधुर और सुरीली और रस भरी है। भक्तमाल के छंदो के नमूने तो मैं यहाँ नहीं देता। उनकी पुस्तक मौजूद है। जो चाहें खरीद कर पढ़लें। इनके अध्यात्म विचारों की झलक या उपमा दिखाने के हेतु एक शब्द यहाँ प्रस्तुत करता हूँ—

नाभानभ, केला, कमल कील सरसेला।
दरपण नैन सैन मन मांजा, लाजा अलख अकेला।
तिल पर दल, दल ऊपर दामिन, ज्योति में होत उजेला।
अंडा पार सार लख सूरत, सुनी सुन्न सुहेला।
चढ़ गई जाय धाय गढ़ ऊपर शब्द सुरत भया मेला।
यह सब खेल अपेल अमेला, सिंध नीर नद मेला।
जल जल धार सार पद जैसे नहीं गुरू नहीं चेला।
नाभा नैन ऐन अन्दर के खुल गये निरख निहाला।
संत उंचिष्ट वार मन झेला दुर्लभ दीन दुहेला।
वाह! वाह! क्या अनुपम वाणी है! कैसी सूक्ष्म विचार धारा

दिव्य और अद्भुत है। मनुष्य रात दिन ऐसी परमपुनीत और पवित्र वाणी को गाया करे और मन कभी त्रप्त न हो।

नाभाजी सुर्त शब्द योग के अभ्यासी थे। जैसा इनकी वाणी से प्रगट है। और उप्रोक्त भजन में भी इसका संकेत है।

इस महान आत्मा ने हमको तुमको और सारे विश्व को महात्माओं के चरित्र सुना-सुना कर प्रभु के चरण कमल का भक्त बनाया। अब भी इसके फलस्वरूप कितने भवसागर से पार हो रहे हैं। यदि तुम भी इनको सुनोगे तों क्या मजाल कि तुम्हारा चित्त भगवान के चरणों में न लगे।

आओ ! आओ ! हरि के भक्तों के गुण गावें। और उनसे प्रेम के विचारों को लेकर अपना उद्धार करें ! जिससे मनुष्य जीवन सुफल हो जाय।

—:०:—

चाल चलन

यदि धन द्रव्य गया तो कुछ भी चिन्ता न करो, यदि स्वास्थ्य बिगड गई तब भी सोच मत करो परन्तु यदि चाल चलन बिगड़ ा तो समझो कि तुमने सब कुछ खो दिया। धन द्रव्य फिर हाथ आ सकता है। स्वास्थ भी औषधि के सेवन से ठीक हो सकता है परन्तु चाल चलन का गिरा हुआ मनुष्य सँभल नहीं सकता क्योंकि वह न केवल औरों की दृष्टि से गिरा रहता है किन्तु वह स्वयं अपने आप को तुच्छ और हेटा समझने लगता है।

हमारे शास्त्रों ने लिखा है कि जिसका अपमान लोग किया करते हैं सम्भव है वह सँभल जाये परन्तु जो अपनी दृष्टि में आप गिरा हुआ है उसको बहुत दिनों तक आवागमन के अथाह सागर में गोता खाना पड़ेगा तब जाकर वह शुद्ध होगा।

इसलिये ध्यान रक्खो—यदि साँसारिक धन द्रव्य जाता है तो चिन्ता मत करो। अपने चाल चलन को ठीक रक्खो फिर तुम सब कुछ प्राप्त कर लोगे। यदि यह बिगड़ गया तो समझ लो कि सब कुछ हाथ से जाता रहा।

—:०:—

उदाहरण

किसी अंग्रेजी कारखाने में एक क्लर्क नौकर था। मालिक ने उससे कहा, 'रविवार के दिन आकर काम करो क्योंकि परमावश्यक काम आन पड़ा है।" उसने उत्तर दिया, "यह दिन मैंने ईश्वर की पूजा सेवा के लिये निर्दिष्ट कर रक्खा है। आप इस विषय में कृपया मुझे क्षमा कीजिये।" मालिक को बहुत ही बुरा लगा परन्तु चुपचाप रह गया। एक दूसरे अवसर पर कचहरी में गवाही देने का काम आपड़ा क्लर्क सच्ची बातें जानता था। उसने झूठ बोलने से इन्कार कर दिया। अब तो उसका मालिक बहुत ही घबराया और उसने क्रोध में आकर इसे अलग कर दिया।

क्लर्क बहुत ही निर्धन था। उसने नौकरी की चिन्ता नहीं की परन्तु झूठ बोलने से वह कतराता रहा। वह कुछ दिनों तक बेकार घर बैठा रहा। ईश्वर दयालु और कृपालु हैं। एक बड़े कारखाने के मालिक ने इस पुराने मालिक से एक सच्चा और ईमानदार क्लर्क मांगा। यह अपने मन में अप्रसन्न तो अवश्य था परन्तु हार मान कर इसने लिखा कि इसके जीवन में केवल एक ही मनुष्य सच्चा और धार्मिक मिला जो केवल अपनी सच्चाई और ईमानदारी

के कारण नौकरी से अलग कर दिया गया था।

इस पत्र व्यवहार का परिणाम यह हुआ कि नौकरी इसको मिल गई और थोड़े ही दिनों में अपने नये मालिक का विश्वासपात्र बन गया और अपने कारबार में सच्ची और पूर्ण सफलता प्राप्त करली।

संसार में परीक्षा का समय बराबर आता रहता है। तुम इन परीक्षाओं में पूरे और सच्चे उतरने का यत्न करो। दुःख और आपत्ति की कुछ भी चिन्ता न करो। यदि तुम शुद्धात्मा और सच्चे हो तो संसार अवश्य तुम्हारा सन्मान और सत्कार करेगा। अच्छे चाल चलन का मनुष्य सामग्री न रखते हुए भी अपनी सफलता का यत्न कर लेता है। तुम भली भाँति देखलो कि जब तक मनुष्य अपने सद्विचार पर आरूढ़ रहने का साधन नहीं कर लेता तब तक वह सच्चा शूरवीर और अभय नहीं हो सकता। भीष्मपितामह का जीवन प्रशंसनीय है। इनका असली नाम कुछ और था। भीष्म प्रतिज्ञा करने के कारण उनका ही भीष्म होगया और जीवन पर्यन्त अपनी प्रतिज्ञा पर आरूढ़ रहे। यही कारण है कि उनका नाम आज तक आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है।

हनुमान जी कथा

कहा जाता है कि एक बार भरी सभा में हनुमान जी को मोतियों की माला दी गई। आप इसके एक एक मोती को तोड़-तोड़ कर देखने लगे। सब लोग आश्चर्य करने लगे। बहुतों ने हँसी में कह भी दिया, "बन्दर ही तो है। इसे मोतियों की क्या परख है।" सभा में एक नवयुवक भी बैठा हुआ था। उसने पूछा, "महाराज ! यह आप क्या करते हैं? ऐसे बहुमूल्य हार को क्यों नष्ट कर रहे हैं?" हनुमान जी ने झट उत्तर दिया "मैं हर दाने में देखता हूं कि इसमें राम नाम है या नहीं? यदि राम नाम है तो यह अवश्य अमूल्य वस्तु है नहीं तो यह मेरे लिये व्यर्थ और निरर्थक है।" नबयुवक बोला, "इससे तो यह प्रतीत होता है कि तुम्हारे सारे शरीर में राम नाम लिखा हुआ है।"

हनुमान जी को क्रोध आ गया। अपने बड़े-बड़े नखों से सारे शरीर की खाल उधेड़ कर फेंक दी और कहा, "देखो ! हर जगह राम नाम लिखा हुआ है।" सब लोग देखकर दंग रह गये। शरीर से रुधिर अधिकता के साथ निकला था इसलिये सेंदुर और घी मिला कर उस पर लेप कर दिया गया। यही कारण है कि सनातन धर्मी हिन्दू अब भी हनुमान जी की मूर्ति को सेंदुर से रंगते हैं।

यह केवल कथा है परन्तु सार ग्राही के लिये बहुत ही उपदेश जनक और शिक्षा प्रद है। हनुमान जी रामचन्द्र जी के बहुत बड़े भक्त थे। मालिक की सेवा के अतिरिक्त और किसी ओर ध्यान नहीं देते थे।

जो ईश्वर की उपासना करना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि किसी एक भाव को लेकर रात दिन पकाते रहें जिसमें वह नस नाड़ियों के साथ शरीर का अङ्ग सङ्ग हो जाये और वही उनका प्राण और अधार बन जाये तब उपासना और सुमिरन भजन का कुछ आनंद भी मिलेगा नहीं तो केवल माला फेरने से क्या लाभ है?

महर्षि शिवव्रतलाल कृत हिन्दी पुस्तकें

आध्यात्मिक पुस्तकें

सम्पूर्ण महारामायण	१०)
श्री मद्भगवद्गीता भाग १	१)५०
,, भाग २	१)५०
नानक योग ३ भाग	४)
राधास्वामी योग ६ भाग	८)
कबीर योग प्रथम भाग	२)५०
,, द्वितीय भाग	२)७५
,, तृतीय भाग	१)७५
कबीर आत्म ज्ञान प्रकाश	३)
शरणागति योग	)७५
उपासना योग	१)
ॐ रहस्य	१)
आनन्द योग प्रकाश	२)५०
Light on Anand yog	३)
पंथ संदेश	३)
सहज भक्ति	१)
आत्मिक प्रायमर	१)
दयाल योग (उर्दू)	२)५०

उच्चकोटि के उपन्यास

शाही भूत	१)५०
शाही डाकू	३)७५
शाही लर्कड़हारा सजिल्द	४)६२
शाही भिखारी	३)५०
शाही जादूगरनी	२)५०
आबदार मोती	२)५०
ताबदार मोती	२)५०
झलकदार मोती	३)
गिरहदार मोती	१)२५
रंगदार मोती	२)५०
दलदार मोती	३)७५
कजदार मोती	३)
चमकदार मोती	२)५०
हिसक मोती	२)५०
ओ३म नाविल	३)
शाही भक्तिनी	२)५०
शिवजी की अद्भुत कहानी	१)५०
सिंध देश की कहानियाँ	१)२५

पाठ तथा गाने के शब्द

शिव शब्द सागर सजिल्द भाग १ व २	७) ७)
फकीर भजनावली	१)५०
शब्द गुंजार भाग १, २, ३,	५)
शब्दों का गुटका	)६०
नन्हे भाई की साखी	१)५०
पिंगल साखी	१)
सन्त कबीर की साखी	३)
कबीर गूढ़ शब्द व्याख्या	१)५०
कबीर शब्दावली	२)२५
नैय्यरे आजम	१)५०
रहिमन नीति दोहावली	)७५
सन्त शब्दावली	१)५०

Regd. No. L-ALG—28

पुस्तकें

हमारे यहां

महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज

कृत

हिन्दी की आध्यात्मिक, धार्मिक,
स्त्री उपयोगी,
स्वास्थ्य व मनोविज्ञान सम्बन्धी
पुस्तकें तथा 'शाही' और 'मोती'
सिलसिले के उपन्यास तथा
परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज
कृत उच्च कोटि की अमूल्य पुस्तकें
मिलती हैं।

पूरा सूचीपत्र मंगायें।
डाक खर्च सब का अलग है।
पुस्तकें रजिस्टर्ड डाक या रेल से
भेजी जाती हैं।

मिलने का पता :—

कार्यालय

मनुष्य बनो

शिव भवन, लेखराजनगर,
अलीगढ़ (उ० प्र०)

ग्राहक नं०

श्री

सम्पादक — प्रभुदयाल मीतल
व्यवस्थापक व प्रकाशक—
श्रीमती सुधा मीतल,
[illegible] राज [illegible]

d by S. Mittal, Data Dayal Printers, Aligarh